मूल्य : 25 रूपये

वर्ष : 1, अंक : 1, अप्रैल–जून, 2011

पारस–परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

वर्ष : 1, अंक : 1, अप्रैल – जून, 2011

पारस-परस

अनुक्रमणिका

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

संपादकीय 2
पाठकों की पाती 3

श्रद्धा सुमन
बाबू जी मेरे रूके नही — *डॉ. अनिल कुमार पाठक* 4

कालजयी
किसी के मधुर मिलन... — *पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'* 5
जनतंत्र का जन्म — *रामधारी सिंह 'दिनकर'* 6
कर्मवीर — *अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'* 7
आदमी का गीत — *शील* 8
बस एक बार, मुझको सरकार... — *अल्लहड़ बीकानेरी* 9,10

समय के सारथी
पलकें बिछाये तो नहीं बैठीं — *बालस्वरूप राही* 11
समय से अनुरोध — *डॉ0 अशोक बाजपेयी* 12
नदी का बहना मुझमें हो — *शिवबहादुर सिंह भदौरिया* 13
ऊधो, मोहि ब्रज — *वीरेन डंगवाल* 14,15
अगर मैं धूप के सौदागरों... — *ज्ञान प्रकाश विवेक* 16
प्रभुवर वर दो ! — *सुदर्शन वशिष्ठ* 17
बाढ़ की संभावना — *मोहन द्विवेदी* 18

प्रवासी के बोल
एक बार फिर पाठशाला... — *दीपिका जोशी संध्या* 19
जब ये जीवन प्रारंभ... — *ललित मोहन जोशी* 20
चांद ने फिर से निहारा — *विनय वाजपेयी* 21
मेरा प्यार — *अचला दीप्ति* 22
सबका लेखा सम अनुपाता — *राय कूकणा* 23

नारी स्वर
समय — *कुसुम अग्रवाल* 24
संशय की कारा — *नेहा वैद* 25
आँधी — *डॉ. तारा गुप्ता* 26
दोहे — *डॉ. अंजु सुमन* 27
व्यर्थ विषय — *अजंता शर्मा* 28
सबला — *नुपुर रघु* 29

नवांकुर
आस्था के सुमन — *वेद प्रकाश यजुर्वेदी* 30
दादी तो बेचारी डर ही जातीं — *रणविजय राव* 31
बेईमानी भी वो बला है — *दीपक पारीख* 32
हार जीत — *शैलेश शुभिशाम* 33
अतीत से सीख — *अभय कुमार यादव* 34
अस्तित्व — *शुभम* 35
इस सदी का बच्चा — *अनिरूद्ध सिंह सेंगर* 36
निज स्वारथ की खातिर — *आरसी तिवारी* 37
अमर हो जाये — *स्वदेश* 38
नेता का नजरिया — *बसंत आर्य* 39
अपना देश अपना गांव — *विपिन पवांर निशान* 40

संपादक
डॉ. सुनील जोगी

कार्यकारी संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया नई दिल्ली – 92

प्रवासी संपादकीय सलाहकार
डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)
श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)
श्री सी.एम. सरदार (मस्कट)

मूल्य : 25 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
पंचवार्षिक : 450 रुपये
आजीवन : 5,000 रुपये
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

संपादकीय कार्यालय
आर–101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन, मालवीय नगर
नयी दिल्ली – 110017
दूरभाष – 9811005255

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रकाश पैकेजर्स,** 257, गोलागंज, लखनऊ में मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक – **डॉ. सुनील जोगी ।**

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं । विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे । संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक

संपादकीय

क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका खास मतलब होता है ?

ऐसा लगता है कि सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' की ये पंक्तियां आज भी प्रासंगिक हैं । आज हमारे चारों तरफ कोहराम मचा हुआ है । आजादी की दूसरी लड़ाई लड़ने की बात कही जा रही है । लोगों को लग रहा है कि साठ वर्ष के समय में भी हम लोकतंत्र को उसकी सच्ची भावना के अनुरूप लागू नहीं कर पाये हैं । भ्रष्टाचार और कालाधन, अन्याय और अत्याचार यथावत बने हुए हैं । आखिर इनका खात्मा क्यों नहीं होता ?

ऐसा नहीं कि मौजूदा लोकतंत्र सुख, समृद्धि और संपन्नता नहीं लाया, पर घूम फिरकर बात वहीं पर आती है कि – 'लोहे का स्वाद / लोहार से मत पूछो /घोड़े से पूछो /जिसके मुंह में लगाम है।' निचले पायदान पर खड़ा आदमी आखिर कब देखेगा लोकतंत्र ? क्या इसके लिए एक और लड़ाई जरूरी होगी ?

अन्याय के विरूद्ध लड़ाई कहीं भी हो, कवि–रचनाकार सदैव अग्रिम पंक्ति का सिपाही होता है । उसकी रचनाओं में ही विचार का वह बारूद होता है जो एक जोर धमाके के साथ ऐसा प्रकाश पुंज विखराता है जो समाज को नई दिशा देता है । कदाचित इसीलिए कविता मानवता के लिए बहुत जरूरी है। कविता मनुष्य के हृदय को उन्नत करती है । कविता हमारे अंदर ऐसे मनोवेगों का संचार करती है जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाते हैं । किसी कवि ने कहा है कि:

कविता नारा–कथा–गद्य–इतिहास नहीं है
कविता कोरा व्यंग्य हास परिहास नहीं है
यह है तरल प्रवाह सत्य के भाव पक्ष का
वशीभूत होता जिससे जड़ भी समक्ष का
कविता जो मन के ऋतु का परिवर्तन कर दे
कभी स्नेह तो कभी आग अंतर में भर दे !

कविता के इन्हीं विविध पक्षों को इस अंक में उजागर करने का प्रयास किया गया है । इसमें राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर की एक ऐसी ही अमूल्य कृति 'जनतंत्र का जन्म' को शामिल किया गया है । साथ ही हमने अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की एक कालजयी रचना 'कर्मवीर' को लिया है जो हमें निरंतर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देती है । 'समय के सारथी' स्तम्भ के अंतर्गत इस बार हमने सुप्रसिद्ध समालोचक, साहित्यकार और कवि डॉ0 अशोक वाजपेयी की रचना 'समय से अनुरोध' को शामिल किया है । गीत विधा के मौजूदा समय के सशक्त हस्ताक्षर शिवबहादुर सिंह भदौरिया की रचना – 'नदी का बहना मुझमे हो' को शामिल कर हमने अपने पाठकों की विविध रूचि को ध्यान में रखा है । इसके अतिरिक्ति इस अंक में हमने हास्य–व्यंग्य की कुछ बेहतरीन कविताओं को शामिल किया है ताकि हमारे पाठक साहित्य के इस रंग का भी भरपूर आनंद ले सकें ।

हम अपने सभी पाठकों के संज्ञान में एक बात यह भी लाना चाहेंगे कि विगत में हमें अपने कई शुभेच्छु पाठकों और इस पत्रिका में अपना अमूल्य योगदान देने वाले सहयोगियों से यह सुझाव प्राप्त हुआ कि मौजूदा **पारस–पखान पत्रिका के नामकरण में परिवर्तन कर इसे पारस–परस कर दिया जाना चाहिए । अतएव अब यह पत्रिका पारस–परस के नाम से प्रकाशित होगी ।** जैसा कि आप सभी जानते हैं कि पारस एक ऐसी स्पर्शमणि है जिसके स्पर्श मात्र से लोहा भी सोना हो जाता है । हम आशा करते हैं कि पारस–परस में प्रकाशित सभी रचनाएं आपके लिए अत्यधिक मूल्यवान और प्रेरक होंगी ।

–डॉ0 सुनील जोगी
(संपादक)

आदरणीय संपादक जी,

पारस–पखान का जनवरी–मार्च, 2011 का अद्यतन अंक पढ़ा । इसमें आपने बहुत ही अच्छी और प्रेरक कविताएं प्रकाशित की हैं । पत्रिका के मुखपृष्ठ पर आपने माता जी का फोटो दिया है । लेकिन पत्रिका में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है कि ये माता जी कौन हैं और किस प्रयोजन से मुखपृष्ठ पर उनका फोटो प्रकाशित किया गया है । यदि भविष्य में मुखपृष्ठ पर कोई फोटो छापें तो यह अवश्य स्पष्ट करें कि फोटो किसका है और उसे किस कारण मुखपृष्ठ पर दिया जा रहा है । धन्यवाद ।

– बृजेश कुमार
फरीदाबाद

पारस–पखान का पिछला अंक पढ़ा । इसमें कोई संशय नहीं है कि आपने इसमें हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट और संग्रहणीय कविताओं का चयन किया है, लेकिन मैं इसकी प्रूफरीडिंग की कुछ गल्तियों की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं – जैसे दुष्यंत कुमार का एक शेर है – 'रक्त वर्षों से नसों में खौलता है' लेकिन आपकी पत्रिका में प्रकाशित हुआ है – रक्त वर्षों से लहू में खौलता है । इसी तरह कन्हैयालाल नंदन का पंक्तियां है – 'नदी की कहानी कभी फिर सुनाना' मगर आपकी पत्रिका में छपा है – नींद की कहानी कभी फिर सुनाना' । आशा है भविष्य में इस तरह की गल्तियां नहीं करेंगे ।

–विकास नेमा
भोपाल, मध्य प्रदेश

मैंने पारस–पखान के इस अंक में शंभूनाथ सिंह का गीत'– 'समय की शिला पर' पढ़ा । इस गीत को मैं पिछले कई सालों से खोज रही थी । पारस–पखान के इस अंक में इसको पढ़ा तो अपने आप को पत्र लिखने से नहीं रोक पायी । आप इसमें पुराने कवियों की चर्चित और उत्कृष्ट कविताओं को छाप कर हमें अतीत से जोड़ने का सराहनीय कार्य कर रहे हैं । इसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद ।

–गीतांजलि त्रिपाठी
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

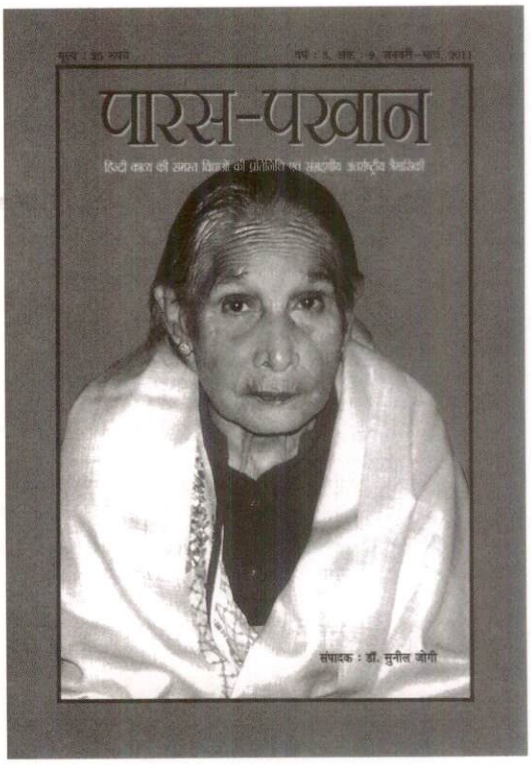

पारस–पखान का जनवरी–मार्च, 2011 का अंक पढ़ा । इसके कालजयी कॉलम में आपने बहुत ही अच्छी कविताओं का चयन किया है, विषेशकर 'जिंदगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी', बहुत अच्छी लगी । इसके अलावा सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'यह कदम्ब का पेड़' और नागार्जुन की कविता 'चंदू मैंने सपना देखा' उत्कृष्ट कविताएं हैं । शिवकुमार बिलग्रामी की 'अनाथ की मां' मां पर अब तक लिखी गयी कविताओं से अलग दिखाई पड़ी । इसमें बहुत अधिक संवेदना है । आशा है आप भविष्य में भी इसी तरह की अच्छी और स्तरीय कविताएं प्रकाशित करेंगे ।

–पंकज सिंह जादौन
जयपुर, राजस्थान

बाबू जी मेरे रुके नहीं

– डॉ0 अनिल कुमार पाठक

उन्हें पुकारा जिसने भी
रुक गये उसी के खातिर।
ममता, करुणा व स्नेह भरा
था जो उनमें आखिर ।
ऐसे लोगों को अपनाकर भी
कभी दुखी वे दिखे नहीं ।
बाबू जी मेरे रुके नहीं ।।

पर छोड़ गये जो साथ
राह में लालचवश।
सोचा वे भी रुक जायेंगे
डरकर, होंगे परवश।
निष्काम भाव से चले सदा,
इन बातों से डिगे नहीं।
बाबू जी मेरे रुके नहीं ।।

राजदण्ड व सत्ता के
फरमानों से वो डरे नहीं ।
राजमहल की अनुकम्पा से,
अपने कुठार भी भरे नहीं ।
असहज, विषम क्षणों में भी
हो निराश वो झुके नहीं ।
बाबू जी मेरे रुके नहीं ।।

वे थे मानवता के पोषक
पीड़ित जन के थे रक्षक ।
रहे समर्पित जीवन भर,
हों विलुप्त भक्षक–तक्षक ।
ऐसी विभूति की स्मृतियां,
इस मन से कभी मिटे नहीं।
बाबू जी मेरे रुके नहीं ।।

किसी के मधुर मिलन की बात

– पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

किसी के चल–चितवन के–कोर, बुलाते हों जब अपनी ओर,
मिलन की किये प्रतीक्षा मौन, कर रहे इंगित से जब शोर,
सुधा से सिंचित दो ये नयन बने करूणा के जब आगार,
किसी की मौन प्रार्थना तब कहो कैसे न करुँ स्वीकार ।

किसी की बाहों के दो छोर, खींचते हो जब अपनी ओर,
संकुचित अंगुलियों का संसार, हो रहा जब आनन्द विभोर,
कर रहे हों जब दो कोमल हाथ मधुर आलिंगन का व्यवहार,
किसी के मधुर मिलन की बात, कहो कैसे न करुँ स्वीकार ।

किसी के जीवन का श्रृंगार, समर्पित करने को अपना संसार,
जाग कर जो दिन अरु रात पहुँच ही जाय किसी के द्वार,
उजड़ता हो बनकर तत्काल किसी का जब मधुमय संसार,
उपेक्षा कैसे कर दूँ हाय, नहीं सीखा ऐसा निष्ठुर व्यवहार ।

किसी की अलसित–जीवन–नाव तरंगों से पाती हो जब घाव,
न जिसके चलने का कुछ दाँव, पवन से रुके हुये हों पाँव,
चाहता हो जो कुछ साहाय्य कि जिसका घर ही हो मझधार,
न होगा मुझसे ऐसा पाप छीन लूँ हाथों से पतवार ।

शहर सभी हैं एक से क्या दिल्ली – भोपाल
जगह वही अच्छी लगे, जो दे रोटी–दाल

– यश मालवीय

जनतंत्र का जन्म

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

सदियों की ठन्डी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें वही,
जाड़े–पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग–अंग में लगे सांप हों चूस रहे,
तब भी न कभी मुहँ खोल दर्द कहने वाली ।

लेकिन, होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

हुंकारो से महलों की नींव उखड़ जाती है,
सांसों के बल से ताज हवा का उड़ता है,
जनता की रोके राह समय से ताब कहां ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है ।

सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुंचा,
तैंतीस कोटि–हित सिंहासन तैयार करो,
अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो ।

आरती लिए तू किसे ढूंढता है मूरख,
मंदिरों, राज प्रासदों में, तहखानों में,
देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में ।

फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं,
धूसरता सोने से श्रृंगार सजाती है,
दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

कर्मवीर

– अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उबताते नहीं
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं
हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले ।

आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही
मानते जो भी हैं सुनते हैं सदा सबकी कही
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही
भूल कर वे दूसरों का मुहँ कभी तकते नहीं
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ।

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं
आज कल करते हुये जो दिन गंवाते हैं नहीं
यत्न करने से कभी जो जी चुराते हैं नहीं
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिये
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ।

व्योम को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर
वे घने जंगल जहां रहता है तम आठों पहर
गर्जते जल–राशि की उठती हुयी ऊँची लहर
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लपट
ये कंपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ।

आँखों में लग जाएं तो, नाहक निकले खून,
बेहतर है छोटे रखें, रिश्तों के नाखून

– आलोक श्रीवास्तव

आदमी का गीत

– शील

देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे
सौ–सौ स्वर्ग उतर आएँगे,
सूरज सोना बरसाएँगे,
दूध–पूत के लिए पहनकर
जीवन की जयमाल,
रोज़ त्यौहार मनाएँगे,
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।
देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।।

सुख सपनों के सुर गूँजेंगे,
मानव की मेहनत पूजेंगे
नई चेतना, नए विचारों की
हम लिए मशाल,
समय को राह दिखाएँगे,
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।
देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल ।
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।।

एक करेंगे मनुष्यता को,
सींचेंगे ममता–समता को,
नई पौध के लिए, बदल
देंगे तारों की चाल,
नया भूगोल बनाएँगे,
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।
देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल ।
नया संसार बसाएँगे, नया इन्सान बनाएँगे ।।

हर पल मांगे मन दुआ, यूँ आँखों को मीच
प्यासा ज्यूँ कँटिया फंसी, रहा बाल्टी खींच

शिवकुमार बिलग्रामी

बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो

— अल्लहड़ बीकानेरी

जो बुड्ढे खूसट नेता हैं उनको गड्ढे में जाने दो,
बस एक बार, बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो ।

मेरे भाषण के डंडे से
भागेगा भूत गरीबी का,
मेरे वक्तव्य सुनें तो झगड़ा
मिटे मियां और बीबी का ।

मेरे आश्वासन के टॉनिक का
एक डोज मिल जाये अगर,
चंदगी राम को करे चित्त
पेशेंट पुराने टीबी का ।

मरियल सी जनता को मीठे, वादों का जूस पिलाने दो,
बस एक बार, बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो ।

जो कत्ल किसी का कर देगा
मैं उसको बरी करा दूंगा,
हर घिसी पिटी हीरोइन की
प्लास्टिक सर्जरी करा दूंगा ।

लड़के–लड़की और लैक्चरार
सब फिल्मी गाने गायेंगे,
हर कालेज में सब्जेक्ट फिल्म का
कंपल्सरी करा दूंगा ।

हिस्ट्री और बीजगणित जैसे विषयों पर बैन लगाने दो,
बस एक बार, बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो ।

जो बिल्कुल फक्कड़ हैं,
उनको राशन उधार तुलवा दूंगा,
जो लोग पियक्कड़ हैं,
उनके घर में ठेके खुलवा दूंगा ।
सरकारी अस्पताल में जिस रोगी को,
मिल न सका बिस्तर,

घर उसकी नब्ज छूटते ही
मैं एंबुलैंस भिजवा दूंगा ।

मैं जनसेवक हूँ मुझको भी थोड़ा सा पुण्य कमाने दो,
बस एक बार, बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो ।

ठग और मुनाफाखोरों की
घेराबंदी करवा दूंगा,
सोना तुरंत गिर जायेगा,
चांदी मंदी करवा दूंगा ।

मैं पल भर में सुलझा दूंगा
परिवार नियोजन का पचड़ा,
शादी से पहले हर दूल्हे की
नसबंदी करवा दूंगा ।

होकर बेधड़क मनाएंगे, फिर हनीमून दीवाने दो,
बस एक बार, बस एक बार, मुझको सरकार बनाने दो ।

निवेदन

- आप मेरे ई मेल–आई डी kavisuniljogi@gmail.com पर विज्ञापन या रचनाएं भेजकर पत्रिका की निरंतरता में अपना योगदान दे सकते हैं।
- समीक्षा के लिए अपनी सद्यःप्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियां हमें भेज सकते हैं।
- यदि 'पारस–परस' पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम–से–कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।

पलकें बिछाये तो नहीं बैठीं

— बालस्वरूप राही

कंटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पांव को मेरे,
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाये तो नहीं बैठीं ।

हवाओं में न जाने आज क्यों कुछ–कुछ नमी सी है
डगर की उष्णता में भी न जाने क्यों कमी सी है,
गगन पर बदलियां लहरा रही हैं श्याम आंचल सी
कहीं तुम नयन में सावन बिछाये तो नहीं बैठीं ।

अमावस्या की दुल्हन सोई हुई है अवनि से लग कर
न जाने तारिकाएं बाट किसकी जोहतीं जगकर
गहन तम है डगर मेरी मगर फिर भी चमकती है,
कहीं तुम द्वार पर दीपक जलाये तो नहीं बैठीं ।

हुई कुछ बात ऐसी फूल भी फीके पड़े जाते
सितारे भी चमक पर आज तो अपनी न इतराते,
बहुत शरमा रहा है बदलियों की ओट में चंदा
कहीं तुम आँख में काजल लगाए तो नहीं बैठीं ।

कंटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पांव को मेरे
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाये तो नहीं बैठीं ।

मान मोह मन मानिनी, मंद मंद मुस्कान
बेटी कोमल भावना, बेटी घर की शान
अशोक गीते

समय से अनुरोध

– डॉ0 अशोक बाजपेयी

समय, मुझे सिखाओ
कैसे भर जाता है घाव ? – पर
एक अदृश्य फांस दुखती रहती है
जीवन–भर ।

समय, मुझे बताओ
कैसे जब सब भूल चुके होंगे
रोजमर्रा के जीवन–व्यापार में
मैं याद रख सकूँ
और दूसरों से बेहतर न महसूस करूँ ।

समय, मुझे सुझाओ
कैसे मैं अपनी रोशनी बचाए रखूँ
तेल चुक जाने के बाद भी
ताकि वह लड़का
उधार लाई महँगी किताब
एक रात में ही पूरी पढ़ सके ।

समय, मुझे सुनाओ वह कहानी
जब व्यर्थ पड़ चुके हों शब्द,
अस्वीकार किया जा चुका हो सच
और बाकी न बची हो जूझने की शक्ति
तब भी किसी ने छोड़ा न हो प्रेम,
तजी न हो आसक्ति,
झुठलाया न हो अपना मोह ।

समय सुनाओ उसकी गाथा
जो अंत तक बिना झुके
बिना गिड़गिड़ाए या लड़खड़ाए,
बिना थके और हारे, बिना संग–साथी
बिना अपनी यातना को सबके लिए गाए,
अपने अंत की ओर चला गया ।

समय, अंधेरे में हाथ थामने,
सुनसान में गुनगुनाहट भरने,
सहारा देने, धीरज बंधाने
अडिग रहने, साथ चलने और लड़ने का
कोई भूला–बिसरा पुराना गीत तुम्हें याद हो
तो समय, गाओ
ताकि यह समय,
यह अँधेरा
यह भारी
यह असह्य समय कटे !

नदी का बहना मुझमें हो

– शिवबहादुर सिंह भदौरिया

मेरी
कोशिश है कि
नदी का बहना मुझमें हो

तट से सटे कछार घने हों
जगह–जगह पर घाट बनें हों
टीलों पर मंदिर हों जिनमें
स्वर के विविध वितान तनें हों
भीड़
मूर्छनाओं का
उठना–गिरना मुझमें हो

जो भी प्यास पकड़ ले कगरी
भर ले जाये खाली गगरी
छूकर तीर उदास न लौटें
हिरन कि गाय कि बाघ कि बकरी
मच्छ–मगर
घड़ियाल
सभी का रहना मुझमें हो

मैं न रुकूँ संग्रह के घर में
धार रहे मेरे तेवर में
मेरा बदन काट कर नहरें
ले जाएं पानी ऊसर में
जहाँ कहीं हो
बंजरपन का
मरना मुझमें हो

जीवन का मेला लगा, बिखरे रंग हजार
तू भी कोई छाँट ले, क्यों बैठा मन मार
किशोर कुमार कौशल

ऊधो, मोहि ब्रज

– वीरेन डंगवाल

गोड़ रहीं माई ओ मउसी ऊ देखौ
आपन–आपन बालू के खेत
कहां को बिलाये ओ बेटवा बताओ
सिगरे बस रेत ही रेत ।
अनवरसीटी हिरानी हे भइया
हेराना सटेसन परयाग
जाने केधर गै ऊ सिविल लैनवा
किन बैरन लगाई ई आग ।

वो जोशभरे नारे वह गुत्थमगुत्था बहसों की
वे अध्यापक कितने उदात्त और वत्सल
वह कहवाघर !
जिसकी खुश्बू बेचैन बुलाया करती थी
हम कंगलों को ।

दोसे महान
जीवन में पहली बार चखा जो हैम्बरगर ।
छूंगूपनवाड़ी शानदार
अद्भुत उधार ।
दोस्त निष्छल । विद्वेषहीन
जिनकी विस्तीर्ण भुजाओं में था विश्व सकल
सकल प्रेम
ज्ञान सकल ।
अधपकी निमौली जैसा सुन्दर वह हरा पीला
चिपचिपा प्यार
वे पेड़ नीम के ठण्डे
चित्ताकर्षक पपड़ीवाले काले तनों पर
गोंद में सटी चली जाती मोटी वाली चींटियों
की कतार
काफी ऊपर तक
इन्हीं तनों से टिका देते थे हम

बिना स्टैण्ड वाली अपनी किराये की साइकिल ।
सड़कें वे नदियों जैसी शान्त और मन्थर
अमरूदों की उत्तेजक लालसा भरी गन्ध
धीमे–धीमे से डग भरता हुआ अक्टूबर
गोया फ़िराक़ ।
कम्पनीबाग के भीने पीले वे गुलाब
जिन पर तिरछी आ जाया करती थी बहार
वह लोकनाथ की गली गाढ़ लस्सी वाली
वे तुर्श समोसे मिर्ची का मीठा अचार
सब याद बेतरह आते हैं जब मैं जाता जाता जाता हूं ।

अब बगुले हैं या पण्डे हैं या कउए हैं या हैं वकील
या नर्सिंग होम, नये युग की बेहूदा पर मुश्किल दलील
नर्म भोले मृगछौनों के आखेटोत्सुक लूमड़ सियार
खग कूजन भी हो रहा लीन !
अब बोल यार बस बहुत हुआ
कुछ तो खुद को झकझोर यार !

कुर्ते पर पहिने जीन्स जभी से तुम भइया
हम समझ लिये
अब बखत तुम्हारा ठीक नहीं !

सब की कमियाँ खोजते, फिरते हो चहुंओर
कभी–कभी तो देख लो, मुड़कर अपनी ओर

डॉ0 जगदीश व्योम

अगर मैं धूप के सौदागरों से डर जाता

- ज्ञान प्रकाश विवेक

अगर मैं धूप के सौदागरों से डर जाता
तो अपनी बर्फ उठाकर बता किधर जाता

पकड़ के छोड़ दिया मैंने एक जुगनू को
मैं उससे खेलता रहता तो वो बिखर जाता

अगर मैं उसको बता कि मैं हूं शीशे का
मेरा रकीब मुझे चूर–चूर कर जाता

तमाम रात भिखारी भटकता फिरता रहा
जो होता उसका कोई घर तो वो भी घर जाता

तमाम उम्र बनाई हैं तूने बन्दूकें
अगर खिलौने बनाता तो कुछ सँवर जाता

रास्ते को भी दोष दे, आँखे भी कर लाल
चप्पल में जो कील है, पहले उसे निकाल
– निदा फाजली

प्रभुवर वर दो !

– सुदर्शन वशिष्ठ

प्रभुवर वर दो !
अनाचार और व्यभिचार से मैं बच पाऊँ,
यह न माग़ूँ,
इनमें कैसे रच बस जाऊँ, ऐसा वर दो !
प्रभुवर वर दो !

यीशू नानक राम कृष्ण हों, यह न जानूँ
इतना जानूँ करुणानिधि हों, दयानिधान हों
तब ही माँगूँ प्रभुवर वर दो !
देश के खातिर लुट जाऊँ, मैं यह न माँगूँ–
देश में कैसे लूट मचाऊँ, ऐसा वर दो !
प्रभुवर वर दो !

बाड़ बन मैं खेत को खाऊँ
सेवक बन कर घात लगाऊँ
ऊँचे स्टेजों पर चिल्लाऊँ
रसीद छाप चंदा धन पाऊँ
अबलाओं के घर बसाऊँ
भेदभाव और सम्प्रदाय की आग लगाऊँ
फिर खुद ही पानी छिड़काऊँ
चोरी कर के चोर–चोर कर शोर मचाऊँ
गला घोंट हत्यारे ढूँढूँ
मोहरे पर मैं मोहरा बदलूँ
चेहरे पर मैं चेहरा बदलूँ
प्रभुवर वर दो !
गरीब बनूँ मैं, दीन बनूँ मैं, हीन बनूँ मैं
मैं कहता हूँ निर्धनता की रेखा से भी
नीचे–नीचे जीऊँ मैं

राम करे अपंग हो जाऊँ
फिर चयनित परिवार कहलाऊँ
नई तोड़ पर घर बसाऊँ
आंगन मैं एक भैंस बंधाऊँ
घर में बैठा–बैठा खाऊँ
लोन सब्सिडी भरपेट पचाऊँ
फिर बोलूँ छप्पर खाली है
लोन नही अब बरबादी है
माफ करो अब कर्ज हमारे
हम सेवक तुम बाप हमारे
और बड़ा कोई लोन दिलाओ
दास जोनों के काज सँवारो
प्रभुवर वर दो !

दानवता के सामने, मानवता लाचार
कैसी है यह बेबसी, कैसा यह व्यापार
डॉ0 आनन्द

बाढ़ की संभावना

—मोहन द्विवेदी

बाढ़ की संभावना है, इस नदी में,
बाँध के फाटक पुराने हो गये हैं ।
घट रहे हैं स्रोत, बातें आम हैं पर,
खास मनमाने मुहाने हो गये हैं ।।

खोखला करते रहे जो, थे हितैषी,
शर्त थी तटबंध को सन्तुष्ट करना ।
लोकमंगल चाहिए तो, खोल तोड़ो,
छोड़ दाने डालकर सन्तुष्ट करना ।
मछलियों को बाँटते हैं, जिन्दगी ये,
ताल के बगुले सयाने हो गये हैं ।।

उड़ रहे हैं रोज वादे, बादलों से,
जो गरजते हैं मगर पानी नहीं हैं ।
टूटता ही जा रहा, मन का भरोसा,
कर्ण जैसा दूसरा दानी नहीं है ।
भीगती हैं नित्य सड़कें, अब लहू से,
पिलपिले सारे बहाने हो गये हैं ।।

आदमी के पास जो, अनमोल थाती,
बह न जायें आज वे संवेदनाएँ ।
यह धरोहर पूर्वजों की, खो गई तो,
फिर क्षमा कैसे करेंगी याचनाएँ ।
बांसुरी कब तक बजेगी, त्रासदी में,
गालियों के गीत, ताने हो गये हैं ।।

कवि की कोई जाति नहिं, नहीं है कोई धर्म
केवल हिय के भाव का, व्यक्त करे वह मर्म
महेन्द्र प्रताप पांडेय 'नंद'

एक बार फिर पाठशाला जाना है

– दीपिका जोशी संध्या (कुवैत से)

दौड़ कर बैठूंगा मैं उसी बेंच पर
राष्ट्रगान सब के साथ मिल कर गाना है
नई कापी की खुशबू सूंघ कर
नाम मुझे उस पर मां से लिखवाना है
इसलिए एक बार फिर पाठशाला जाना है ।

छुट्टी होते ही वॉटर बॉटल छोड़कर
नलके को हाथ लगा कर पीना पानी है
दौड़ते भागते डब्बा खत्म कर
नमक मिर्च से बेर औ' इमली खानी है
यदि बारिश आए तो पाठशाला से
छुट्टी शायद मुझे कल ही करवानी है
गहरी नींद सोना है, यही ख्वाब ले कर
अचानक छुट्टी का आनंद मुझे पाना है
इसलिए एक बार फिर पाठशाला जाना है ।

लंबी घंटी बजते ही हुई घर की छुट्टी
दोस्तों संग साइकिल रेस लगानी है
दिवाली की छुट्टी की राह देखते
पढ़ पढ़ के छमाही परीक्षा भी निभानी है
खूब अनार चकरी कल चलाए थे
अधजली फुलझड़ी फिर ढूंढ़ लानी है
छुट्टी का यह किस्सा, दोस्तों को सुनाना है
इसलिए एक बार फिर पाठशाला जाना है ।

जिम्मेदारी के बोझ से अच्छा है
मैं उठा लूंगा भारी बस्ता मेरा
वातानुकूलित ऑफिस से अच्छा है
स्कूल में बिन पंखे का कमरा मेरा
अकेली कुर्सी से लाख अच्छा है
कक्षा का टूटा हुआ बेंच मेरा
दो की बेंच पर तीन दोस्तों को बैठाना है
इसलिए एक बार फिर पाठशाला जाना है ।

सुना था, बचपन बहुत प्यारा होता है
कुछ–कुछ समझ में आज आने लगा है
सच में यह सच है ? सर से पूछकर आना है
इसलिए एक बार फिर पाठशाला जाना है ।

नदिया अमृत बांट कर, खुद करती विषपान
पता नही किस मोड़ पर, दे दे अपनी जान
– अशोक अंजुम

जब ये जीवन प्रारंभ होता है

– ललित मोहन जोशी (ब्रिटेन से)

प्रत्येक जीवन एक मृत्यु से प्रारंभ होता है
मृत्यु हमारी कल्पनाओं की
हमारे स्वप्नों की
ये उन गहन अनुभूतियों से प्रारंभ होता है
जो आज तक हमसे परे थीं
जीवन प्रारंभ होता है
जब एक भावग्निकुंड
हमारे अंतर में धू–धू कर जल रहा होता है
यह प्रारंभ होता है
जब इस अग्निकुंड का दाह
हमारे अंतःकरण तक ही सीमित होता है
पर कभी भी जीवन
इस दाह की चीख से प्रारंभ नहीं होता
जीवन एक संपूर्ण मौन से प्रारंभ होता है
जब हमारी समस्त प्रतिक्रियाएं
मृत हो गई हों
हमारा सर्वस्व मृत हो गया हो
और अंतःकरण ही शेष रह गया हो !

अरुणा भई विभावरी, ढूँढत पियकौ गाँव
कितै पिया की डगरिया, कितै पिया कौ ठाँव
– बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

चांद ने फिर से निहारा

– विनय वाजपेयी (अमेरिका से)

हृदय की अमराइयों में
है मधुप की मधुर गुनगुन
या कि तुमने है पुकारा ।
चांद ने फिर से निहारा ।।

रात भीगी, नयन भीगे
तम जनित विस्तार सारा
भास्कर की प्रथम चितवन
या कि तुमने है पुकारा ।
चांद ने फिर से निहारा ।।

सूने वन में एक राही
क्षितिज विस्तारित पथों में
कोमलांगों का सहारा
या कि तुमने है पुकारा ।
चांद ने फिर से निहारा ।।

एक अबुझ सी चाह लेकर
युगों से प्यासा पपीहा
स्वाति का अमृत ये सारा
या कि तुमने है पुकारा ।
चांद ने फिर से निहारा ।।

कुटिलता से पूर्ण जन–जन
स्वार्थी है विश्व का मन
प्रेम का आंचल समेटे
तुमने ही तो है पुकारा ।
चांद ने फिर से निहारा ।।

सुख सुविधा के कर लिए, जमा सभी सामान
कौड़ी पास न प्रेम की, बनते हैं धनवान
– **अंसार कबीर**

मेरा प्यार

– अचला दीप्ति (कनाडा से)

टेक कर घुटने झुका सिर, प्रेम का जो दान माँगे।
हो किसी का प्यार लेकिन, प्यार वो मेरा नही है।।

रख न पाया मान निज जो, प्यार वो कैसे करेगा ?
हीनता से ग्रस्त है जो, दीनता ही दे सकेगा
द्वार पर तेरे खड़ा हूं, स्नेह का लेकर निमंत्रण
एक चुटकी भीख को यह दीन का फेरा नहीं है ।
हो किसी का प्यार लेकिन, प्यार वो मेरा नहीं है ।।

है विदित, होती रही है प्यार की उद्याम धारा
बँध सके जो बंधनों से और ना निज कूल से
राह में अवरोध कोई सर उठाए
यह झुका दे, तोड़ दे, ढाये उखाड़े मूल से
है अगर यह प्यार तो आश्वस्त हूं मैं
इस प्रभंजन ने प्रबल, यह मन मेरा घेरा नहीं है ।
हो किसी का प्यार लेकिन, प्यार वो मेरा नहीं है ।।

प्यार वो है ले बहे जो, मंद मंथर गति निरंतर
जी उठे स्पर्श पाकर हाँफती मरुभूमि बंजर
मन रखता मान देता, मधुर मंगल रूप कोमल
प्यार का जो स्वप्न मेरा क्या वही तेरा नही है ?
टेक कर घुटने झुका सिर, प्रेम का जो दान माँगे ।
हो किसी का प्यार लेकिन, प्यार वो मेरा नहीं है ।।

खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वाकी धार
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार
– **खुसरो**

सबका लेखा सम अनुपाता

– राय कूकणा (आस्ट्रेलिया से)

दाता देता दिल खोल के देता
सबका हिस्सा तोल के देता
सबको सांझी दौलत दीनी
तौल जोख तकदीर सजाई ।

पर अलग तराजू तौली हमने
असली गठड़ी न खोली हमने
मौल भाव हैं अलग हमारे
अलग–अलग ही थाह लगाई ।

कौन कसौटी कनक कढ़ाया
किस जौहरी हीरा मुलवाया
किसको कितना कल्पा किसने
किन धन क्या कीमत लगवाई ।

सत्य का सोना चेतन चाँदी
ब्रह्म बुद्धि से काया सांधी
प्रेम शांति आनंद की मूरत
क्षमा दया सगुणों सँवराई ।

ओज अरुण से शशि से सीरत
पवन से पौरुष धरा से धीरज
क्षुधा पिपासा नियति के नाती
अनुपम मानव देह बनाई ।

मोह की माला नेह की नर्मी
दर्प का दानव गर्व की गर्मी
काम क्रोध विषयों में उलझा
भवसागर भँवरी उतराई ।

कर्म का करघा धर्म का धागा
पीत का ताना जतन से बांधा
काढ तू चादर ऐसी निर्मल
सत्य सरिता सलिल धुलवाई ।

समदृष्टि तिन सब जग जाना
सूक्ष्म रूप सभी में समाना
सब को मंढा एक ही मूरत
सूरत भले दीं भिन्न दिखाई ।

सबका लेखा सम अनुपाता
सबका सृष्टा एक विधाता
प्रभु प्रसाद प्रतिपल पाई
अपना लेखा आप बनाई ।

जिसने सारस की तरह, नभ में भरी उड़ान
उसको ही बस हो सका, सही दिशा का ज्ञान
– गोपाल दास 'नीरज'

समय

– कुसुम अग्रवाल

समय बड़ा बलवान है, सबको मारे मार ।
न काहू से दुश्मनी, ना काहू से प्यार ।।

समय–शिकारी हाथ में लिये खड़ा है तीर ।
सब ही इसके लक्ष्य हैं, धनी, गुणी औ' वीर ।।

समय किसी के वश नहीं, ना ही है मोहताज ।
बारी–बारी घूमता, नही किसी की लाज ।।

व्यर्थ समय मत खोइये, नहीं दुबारा आय ।
काल सर्प के दंश से, ना कोई बच पाय ।।

समय का पहिया घूमता, रोके न रुक पाय ।
कल कल पगले क्यों करे, कल तो कभी न आये ।।

आज रूप का दर्प है, होगा कल कंकाल ।
मत इस पर तू गर्व कर, यह जी का जंजाल ।।

रेतीले टीले चढ़ी, समझूँ मैं चट्टान ।
हवा चली, रेती उड़ी, भहरा गिरी मचान ।।

सुखी छदम्मीलाल हैं, लखपति दुखी उदास
जीना जिसको आ गया, सब सुख उसके पास

– कमलेश भट्ट कमल

संशय की कारा

— नेहा वैद

आप ही पंछी, आप ही पिंजरा जग सारा ।
कितनी दुखदाई है, संशय की कारा ।।
मन की धरती पर, काँटें उग आते हैं
संवेदन के फूल कहाँ खिल पाते हैं
गन्ध–भरी बातों का मौसम रोता है
रंग–भरे तितली के 'पर' कट जाते हैं
घबरा उठती प्रेम–पुनीता रसधारा ।
कितनी दुखदाई है, संशय की कारा ।।

रास कहाँ आती हैं बातें रास की
छीज गई झीनी चादर विश्वास की
महाभाव से डरी, भावना की गोपी
आ न सकी फिर बाँहों में उल्लास की
और धधकता रहा हृदय का अंगारा ।
कितनी दुखदाई है, संशय की कारा ।।

जितना चाहे बढ़े सरोवर में पानी
संशय की लहरें करती हों मनमानी
कमल सदा ऊपर ही तिरता रहता है
उसमें कोई शक्ति रही है अनजानी
यही सुनाता फिरता मन का इकतारा ।
कितनी दुखदाई है, संशय की कारा ।।

स्वारथ है कोई नहीं, ना कोई व्यापार
माँ का अनुपम प्रेम है, शीतल सुखद बयार
— **अम्बरीष श्रीवास्तव**

आँधी

– डॉ0 तारा गुप्ता

आँधियों तुमको भला क्या हो गया है,
मन तुम्हारा भी कहीं क्या खो गया है ।

हर दिशा में तेज इक रफ्तार थी तुम,
पतझड़ों के बीच में पतवार थी तुम,
धूल से तुमने बनाये थे कभी जो,
चित्र सारे मेघ आकर धो गया है ।

रेत से सिर को ढके तुम आ रहीं थीं,
मेघ की बरसात संग में ला रही थीं,
बह रही थी पेड़ की परछाइयों से
बेवफा सारा ज़माना हो गया है ।

तुम तो उड़ती ही रहीं थीं बीच अम्बर,
इस धरा को छूने भर की प्यास लेकर,
पेड़ पीपल के सभी कहने लगे हैं,
भाग्य क्या बोलो तुम्हारा सो गया है ।

आवत ही हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह
तुलसी तहां न जाइये, कंचन बरसे मेह
– तुलसीदास

दोहे

– डॉ0 अंजु सुमन

अर्थव्यवस्था को बड़ी, देते गहरी चोट ।
कोरे–कोरे दीखते, कितने नकली नोट ।।

दौड़े रथ आतंक के, बात हुई ये आम ।
और शांति की राह में, लगे हुए हैं जाम ।।

कलयुग के इस दौर में कलम बनी हथियार ।
खबरें घटना–पूर्व ही, छपने को तैयार ।।

सिंह–गर्जना कर रहा, देख सामने दीन ।
मन–हिरना की आस को, देख, न ऐसे छीन ।।

मूरत के आगे नहीं, माथा उसको टेक ।
जिस दीपक ने बाल दीं, बाती बुझीं अनेक ।।

बाँस–भित्तियाँ गिर गई, रुका प्रगति का खेल ।
निराधार हो मिट गई, छतनारी इक बेल ।।

जड़ें साथ देती रहीं, पनपा आठों याम ।
पुष्पित–द्रुमदित हो तना, करता अपना नाम ।।

दानवता के सामने, मानवता लाचार
कैसी है यह बेबसी, कैसा यह व्यापार
– डॉ0 आनन्द

व्यर्थ विषय

– अजंता शर्मा

क्षणिक भ्रमित प्यार पाकर तुम क्या करोगे ?
आकाशहीन–आधार पाकर तुम क्या करोगे ?

तुम्हारे ही कदमों से कुचली, रक्त–रंजित भयी
सुर्ख फूलों का हार पाकर तुम क्या करोगे ?

जिनके थिरकन पर न हो रोने हँसने का गुमान
ऐसी घुँघरु की झनकार पाकर तुम क्या करोगे ?

अभिशप्त बोध करता हो जो देह तुम्हारे स्पर्श से,
उस लाश पर अधिकार पाकर तुम क्या करोगे ?

तुम जो मूक हो, कहीं बधिर, तो कुछ अंधे भी,
मेरी कथा का सार पाकर तुम क्या करोगे ?

है न मरज़ पर दर्द तो फिर भी होता है
जाने क्यूं दिल बेमतलब ही रोता है
– शिवकुमार बिलग्रामी

सबला

– नुपुर रघु

पार कर देहरी; स्त्री जब करती प्रवेश
धर नव वेष; जीवन संग्राम में;
इस द्वंद्व–पूर्ण धाम में;
पड़ती उस पर जो दृष्टि संशयपूर्ण
लहराता अविश्वास; आस–पास
उसकी योग्यता के प्रति; सफलता और मेधा के प्रति
किंतु वही जब बन जाती है; नव जागृति
स्वयं ही प्रमाणित हो जाती है; एक कृति
और यह सब होता है संभव, जब
कोई झोंक देता है; स्वयं को झंझोड़ झकोरों में
उठते तूफानों की करती है अगवानी
सिखाती है भापा युग की हवाओं को, देती है मंत्र
गतिमय
प्रवाहों को
तब; लोगों को होता है भान;
उमड़ता है ज्ञान;
और जिसे समझा किए थे अबला
उसे देखकर बार–बार दोहराते ये स्तुतिमंत्रा
'या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।

साधु भया तो क्या भया बोलै नाहिं विचारि
हतै पराइ आत्मा, जीभ बाँधि तरवारि

– कबीरदास

आस्था के सुमन

- वेद प्रकाश यजुर्वेदी

शब्द का अर्थ हम वाँचते रह गये
सत्यता व्यर्थ हम जांचते रह गये
जौहरी ले उड़े मोतियों की लड़ी
सीप का दर्द हम साँचते रह गये

बोध दे कुछ न जो, वह नहीं है कथा
मर्म छूती नहीं जो, नहीं है व्यथा
विश्व–बंधुत्व की भावना से रहित
चोट दे अन्य को, वह नहीं आस्था

पुण्य के वस्त्र हैं पाप से सिक्त अब
भावनायें हृदय की हुईं रिक्त अब
लो, बताओ तुम्ही अब कहाँ जायें हम
नयन की रस–पगी दृष्टि भी तिक्त अब

रूढ़ियाँ रिक्त–सी जो, उन्हें तोड़ दो
ईर्ष्या–दम्भ–बल, द्वेश–दल छोड़ दो
तुम उठो रुष्ट पागल पवन मोड़ दो
स्नेह–सँवरे–सजे सूत्र से जोड़ दो

पूर्ण जीवन जिया है तुम्हारे लिये
कंठ–विष भी पिया है तुम्हारे लिये
शूल पथ से तुम्हारे बुहारुँ सभी
व्रत यही ले लिया है तुम्हारे लिये

अति मदिर–मुग्ध–रोमांच पहली छुअन
है बड़ी कष्ट–कर प्रेम की चिर–चुभन
प्रीति की गंध, विश्वास के शुभ्र कण
बन सको तो बनो आस्था के सुमन

दादी तो बेचारी डर ही जातीं

– रणविजय राव

हमारे घर के सामने
पीपल का बड़ा–सा पेड़ है,
कितनी चमकीली, कोमल, और
गुलाबी होती हैं
पीपल की नन्हीं पत्तियां ।
बहुत सी चिड़ियां
पत्तियां ओढ़े बैठी रहती हैं
लगता है कभी–कभी कि
यह पीपल का पेड़.....
.....तो चिड़ियों का पेड़ है ।
वे शांत नहीं बैठतीं
चहचहाती रहती हैं, और
फुदकती रहती हैं
इस डाली से उस डाली पर
और साथ–साथ फुदकती हैं–पीपल की पत्तियां ।
कभी–कभी हमारे घर में भी
आ जाती हैं चिड़ियां
एक दिन मैं इंतजार करती रही
कि आ जाएं हमारे पास चिड़ियां
और उड़ा ले जाएं अपने साथ मुझे भी ।
कितना अच्छा होता
कि मैं सोचती और चिड़ियां बन जाती
कितना अच्छा होता
कि मैं सोचती और उड़ जाती
पेड़ों से मिलती
मिलती आकाश से
देखती कि आकाश के ऊपर क्या है ?
जब थकती तो फिर लड़की बन जाती ।
पापा, दादी और मां को पता नहीं होता
मुझे ढूंढते रहते
मैं उनके सामने बैठी रहती
बनकर एक सुंदर चिड़िया
फुदकती, चीं–चीं करती चिड़िया
और वे मुझे पहचान नहीं पाते !
फिर अचानक मैं लड़की बन जाती
कितना चौंकते सब
दादी बेचारी तो डर ही जातीं !

बेईमानी भी वो बला है

– दीपक पारीख

बेईमानी भी वह बला है जो,
बिकती है ईमान से ।
उजागर होती है तो बनती तहलका,
नदारद रहती है तो चलती है सरकार ।
सत्ताधारी बेईमानी में जब फँसता है,
विपक्ष ईमानदारी में धँसता है ।
बेईमानी भी वह बला है जो,
बिकती है ईमान से ।
अंतर है उनमें; ''बेईमानी और ईमान'' इतना,
जितना पक्ष और विपक्ष का ।
बेईमानी भी रहती है,
हमेशा सत्ताधारी के पाले में ।
उजागर होती ही तो रहती है,
ईमानदारी से विपक्ष के पाले में ।
विपक्ष को भी मिलता है मौका,
सत्ता को हथियाने का ।
सत्ताधारी बन कर वह
लिप्त हो जाता है बेईमानी में ।
बेईमानी भी वह बला है जो,
बिकती है ईमान से ।

छोटा हूँ तो क्या हुआ जैसे आँसू एक
सागर जैसा स्वाद है तू चख कर तो देख

– नरेश शर्मा (शांडिल्य)

हार जीत

– शैलेश शुभिशाम

हार जीत अब प्रश्न नहीं हैं, प्रश्न नहीं तेरी अभिलाषा
प्रश्न नहीं मेरा ये चिंतन, प्रश्न नहीं अब कोई जरा सा,
तुम अर्धसत्य, तुम विवरण मेरे, तुम मेरी ही संरचना हो
तुम दर्द कहीं, मुस्कान कहीं, तुम कहीं व्यूह की रचना हो ।

तुम काल कहीं, तुम रूप कहीं, कहीं पे तुम खुद मौलिकता हो,
ब्रह्म कहीं, ब्रह्मांड कहीं तुम, तुम कहीं पे नन्हीं सी कविता हो
कहीं अनु हो, कहीं अनुशासन, कहीं छंद हो, कहीं चांद तुम
कहीं नीर तुम, कहीं हो ज्वाला, कहीं जन्म तुम, कहीं चिता हो ।

तेरा प्रश्न पता करने को, जाने क्या मंजर देखा
कुछ आंखों में तपती गर्मी, कुछ आंखों में खंजर देखा ।
कुछ में देखा अक्स तुम्हारा, कुछ में चुप्पी की इक भाषा,
कुछ आंखों में रातें देखी, कुछ में देखी दिन की आशा ।

हार जीत अब प्रश्न नहीं है, प्रश्न नहीं तेरी अभिलाषा
प्रश्न नहीं मेरा ये चिंतन, प्रश्न नहीं अब कोई जरा सा...

अतीत से सीख

– अभय कुमार यादव

भूलकर बीते पलों को कुछ नई शुरूआत कर
छोड़ कर चिंता,
तू चिंतन कुछ नया करने का कर ।

अतीत के कुछ पल
बुरे थे तो क्या
आज भी ये पल अतीत सा है तो क्या
कल शायद होगा बदला हुआ
बड़ा ही खूबसूरत, खुशनुमा
ना पी तू अब हर पल
बीते पलों का जहर
भूलकर बीते पलों को कुछ नई शुरूआत कर ।

दृढ़ता का थामकर दामन
देखो एक बार बढ़कर
अंधेरा खुद ही चल देगा
तेरी जिंदगी को छोड़कर,
कहीं कर रहीं होगी इंतजार
तेरी मंजिल बेसब्री से,
कोशिशें कर ले अभी
फिर खो न जाए, कहीं ये मन
भूलकर बीते पलों को कुछ नई शुरूआत कर ।

अस्तित्व

– शुभम

एक दिन मैंने एक पानी का बुलबुला देखा
उस बुलबुले से बहुत कुछ सीखा

सीखा मैंने जीवन का संघर्ष
दिल पे हुआ धड़कनों का स्पर्श
वो बुलबुला बिल्कुल मेरे जैसा था – तन्हा और खामोश ।

वो बुलबुला पानी में पड़ा जाने क्या सोच रहा था
मुझे लगा शायद वो अपना अस्तित्व खोज रहा था
स्थिर पानी, बुलबुला खामोश ।

मानो उसकी खामोशी को शब्दों की तलाश थी
पानी में रहकर भी जाने क्या प्यास थी
यकायक बुलबुले ने चुप्पी तोड़ी, उसमें उबाल आया
ये बुलबुले को क्या हुआ ?
मन में मेरे सवाल आया

जीवन भर जो न कह सका
आखिरी साँस में कह गया
मरते–मरते स्थिर पानी में हलचल सी कर गया
बार–बार बनना, बार–बार बिगड़ना
यही बुलबुले का व्यक्तित्व है
पानी में बना, पानी में रम गया
नहीं उसका कोई अस्तित्व है ।

मुझे लगा बुलबुले से अच्छा तो मैं हूं
मेरा कोई अस्तित्व तो है
फिर सोचा शायद बुलबुला ही मुझसे अच्छा है
बनना–बिगड़ना, बिगड़के बनना,
उसके जीवन में कुछ चल तो रहा है !

इस सदी का बच्चा

– अनिरुद्ध सिंह सेंगर

बच्चा
खिलौने से खेलता
बोतल से पीता दूध
तरसता मां के आंचल को

बच्चा
चाय की गुमठी में
धोता जूठे कप गिलास
बालश्रम का उड़ाता उपहास

बच्चा
हाथ में लिए कटोरा
मुंह पर लिए याचना
हृदय में लिए वेदना
मांगता भीख

बच्चा
ऊंट दौड़ का हिस्सा
रोजगार बन गया है
मनोरंजन का व्यापार बन गया है

बच्चा
जिसकी पीठ पर
बोझ बन गया बस्ता
बच्चे के पास अब नहीं बची किलकारी
जिसमें ब्रह्मांड दिखता था

बच्चा
अब नहीं मांगता
खेलने के लिए चन्द खिलौना
चाँद में भी अब उसे दिखती है रोटी

बच्चा
हंसते हुए कँपता है
बच्चा
बच्चा होने से डरता है ।

अरुणिम अधरों के बिच
प्रिय दंतावलि चमके ऐसी
आरक्त गगन में जैसे
सित वक् रेखा सन्ध्या की

– शिवकुमार बिलग्रामी

निज स्वारथ की खातिर !

– आरसी तिवारी

प्रकृति ! तुम कितनी विलक्षण हो
अद्‌भुत है तुम्हारा यह संसार
संसार से परे तुम्हारी अगम्य सीमाएं
नहीं, तुम्हें सीमा में
कौन बांध सकता है ?
सूरज की जीवनदायिनी किरणें
शीतल चन्द्र रश्मि
और उन्मुक्त पवन
मानव निर्मित कृत्रिम सीमाओं से
अछूते, स्वतंत्र और समदर्शी
जांति–पांति, रूप–रंग, वर्ण–धर्म
सबसे परे
मानव को मानव से जुड़े रहने की
शिक्षा देती हुई
प्राकृतिक निधियां
जो समायी हैं
तुम्हारे गर्भ में,
कितनी सृष्टि, कितना पोषण
सर्वस्व समर्पण ।
मानव क्यों नहीं लेता है
इनसे सीख
समर्पित है क्यों
इनके विनाश में ?
सीमित जीवन–मानव का
प्रयासरत है,
असीमित को सीमित करने में !

इच्छाएं अनन्त
आशाएं अनन्त
अनन्त नहीं है – तो केवल मानव जीवन
फिर भी
अनन्त पर आक्रमण
जीवनदायिनी का जीवन छीनने का
यह सतत संघर्ष !
क्यों है यह
मानव जीवन का महालक्ष्य !
दो नयनों की यह
दीप्ति प्रखर
क्या नहीं दिखाती सही मार्ग
क्या नहीं सुनायी देता है
झरनों का कलकल निनाद
चहकन चिड़ियों की
झुरमुट पर
कलरव करते
ये जीव सचर
शीतल समीर का
सहज स्पर्श
क्या नही जगाते
मधुर भाव
फिर भी
मानव झुठलाता है
इन सबको
निज स्वारथ की खातिर !

अमर हो जाये

– स्वदेश

दिल डर जाता है घबरा कर
अजीब से ख्यालों को याद कर

जरा आप भी देखें सोच कर
किसी दिन अत्यधिक नाराज हो कर
अगर परमपिता परमेश्वर
दुनिया रख दे उलट–पुलट कर ।

यदि कह दें वे बुलाकर
आज मत उदित होना दिवाकर
चांद तारों को भेज दें वे लिखकर
एक भी किरन न पहुंचे धरती पर
वायु को भी बता दें समझा कर
जाओ कहीं छुप जाओ जाकर
और जल को कह दें डराकर
बर्फ बन जाओ जमकर ।

हे मानव क्यों डरता है सोचकर
अगर ऐसा कुछ हो जाये अगर ।

फिर क्यों ईश्वर को भुलाकर
चलते हो गलत रास्तों पर
दूसरों का दिल दुखाकर
खुश हो जाते हो जी भर
और पराया धन छीनकर
भरते हो अपना घर ।

कहाँ ले जाओगे सब चुराकर
सब कुछ यहीं छूट जायेगा मरने पर
अपनी अंतरात्मा में देखो झाँक कर
आवाज देता है तुम्हें धिक्कार कर ।

मानव जीवन तो है ही दुष्कर
फिर भी ईश्वर को धन्यवाद कर
जिसने सूरज चांद बनाकर
समझाता रोज इशाराकर ।

इसलिए रख लो गांठ बांध कर
दुनिया में आये हो अगर
तो जियो दूसरों के लिए ।

नेता का नजरिया

– बसंत आर्य

एक नेता के बेटे ने
जैसे ही पढ़ना शुरू किया पहाड़ा
और दो–दूनी चार उच्चारा
तो नेता की आत्मा को ठेस पहुंची
और वह जोर से दहाड़ा–
अरे बेटा !
अगर तू भी भूखे भिखमंगों की तरह
गरीबों और नंगों की तरह
दो दूनी चार पढ़ेगा
प्यासा तड़पेगा भूखा मरेगा
अरे पढ़ना ही है
तो दो दूनी सौ पढ़
दो दूनी हजार पढ़
सच की पगडंडी छोड़
झूठ का पहाड़ चढ़ ।
लड़का बोला – पिताजी
आप तो कहेंगे
हम मामले को तूल दें रहे हैं
मगर बुरा मत मानिये
आप शायद पहाड़ा भूल रहे हैं
नेता बोला –
बाप हूं
इसीलिये तुझे सही राह दिखा रहा हूं
और आज के जमाने का
पहाड़ा सिखा रहा हूं ।
थोड़ी देर बाद लड़का बोला –
पिताजी, भूख लगी है
मैं बिस्किट खा लूं
नेता बोला –
तू तो मेरा नाम
अभी से मिट्टी में मिला रहा है
और खा रहा है
तो बिस्किट खा रहा है;
अरे खाना ही है
तो ईंट खा, सिमेंट खा
अभी से अपनी पाचन शक्ति बढ़ा
आज का अभ्यास ही
कल तेरे काम आयेगा
और भगवान ने चाहा तो
एक दिन
तू समूचा हिन्दुस्तान खायेगा !
लड़का बोला –
पिताजी
इतना ज्यादा नहीं कुछ कम खाइये
खाना ही है तो
कुछ इन दुखियारों का दुख
कुछ उन गरीबों का गम खाइये ।
नेता बोला–
तू तो मेरे ही सामने
भाषण झाड़ रहा है
और एक अच्छे भले बाप को
बिगाड़ रहा है !
लड़का होकर उदास
आया पिता के पास
कहने लगा –
पिताजी
हम जैसो के बिगाड़ने से
आप जैसा बाप
अगर जरा सा भी बिगड़ जाता
तो इस देश का भाग्य सँवर जाता ।

अपना देश अपना गांव

– विपिन पवांर 'निशान'

बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
चेहरे पर खुशियों का
मन में नई–नई उमंग का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
गांव की सोंधी–सोंधी ठंडी हवा का
अमृत जैसे साफ स्वच्छ जल का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
घने जंगलों में पक्षियों के मधुर स्वर का
चारों तरफ खुला आसमां, उन बर्फीली
चोटियों का
गाँव में अपने बचपने का
मां के आंचल में ममता का
मां के हाथों बने हुए खाने का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
बीते दिनों के हर इक लम्हों का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
बगीचे में पेड़ों की ठंडी–ठंडी छांव का
उन मीठे–मीठे रसीले फलों का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
गांव की मर्मस्पर्शी मिट्टी का
बचपन की हर इक जगह का
दोस्तों के संग खेलने का
बहुत दिनों बाद एहसास हुआ
परदेश से देश लौटकर
बीते उन हर इक पहलुओं का ।

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल

– रहीमदास

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

वे थे मानवता के पोषक
पीड़ित जन के थे रक्षक ।
रहे समर्पित जीवन भर,
हों विलुप्त भक्षक–तक्षक ।
ऐसी विभूति की स्मृतियां,
इस मन से कभी मिटे नहीं।
बाबू जी मेरे रुके नहीं ।।

डॉ. अनिल कुमार पाठक